Shodh International: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Vol. 1, Issue 1- 2016

दलितोत्थान के प्रति सामाजिक संगठनों के सुधारवादी प्रयास

मोहिनी कुमारी*

Abstract

19वीं शताब्दी में देश का समूचा परिवेश किसी न किसी तरह से सामाजिक और धार्मिक परिवत्रन की दिशा में अवश्य ही गतिशील हुआ था। इसी शताब्दी में 1857 की प्रथम क्रांति हुई, जिसके परिणामस्वरूप शासकीय और प्रशासकीय स्तर पर अनेक नीतियों और कानूनों में संशोधन तथा परिवर्तन भी हुए। शिक्षा के प्रचार–प्रसार के साथ अंग्रेजी भाषा के लिए भी नीति लगू हुई, जिसने कुल मिलाकर भारतीय सोच और परम्परा को आन्दोलकारी परिस्थितियों से जुड़ने के लिए मजबूर किया। जहां एक और नियम और कानूनों की मदद से सरकारी मशीनरी ने हिन्दू धर्म में चली आ रही सड़ी–गली परंपराओं और मान्यताओं में आई हुई विकृति पर कुठाराघात किया, वहीं साथ–साथ सामाजिक संगठनों ने भी अनेक सुधारवादी आंदोलन आरंभ किये। जैसे–जैसे सामाजिक और धार्मिक आंदोलन बल पकड़ रहे थे, वैसे–वैसे दासता और गुलामी की बेड़ियां टूट रहीं थी। इन्हीं घटनाओं ने सदियों से अंधेरे में छटपटा रहे अछुत या दलित वर्ग को जुल्म और अन्याय के खिलाफ विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया था।

यों ''दलित'' शब्द आधुनिक है लेकिन दलितपन प्राचीन। प्राचीन साहित्य में शूद्र, अतिशूद्र, चांडाल, अंत्यज, अंस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है, ये सभी शब्द ''दलित'' शब्द के पुरखे ही हैं। कुछ ने पंचम, अछूत, हरिजन और बहिष्कृत शब्दों का प्रयोग किया। 1916 में माणेकजी दादाभाई ने इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में दलित वर्ग के अन्तर्गत घुमंतु जाति, जरायमपेशा, खानाबदोश और अस्पृश्य आदि को रखा था लेकिन ''मान्टेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार'' के अन्तर्गत ''डिप्रेस्ड क्लासेस'' के साथ सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से पिछड़े हुए समाज का भी उल्लेख किया गया था। बाद में चलकर दलित जातियों का वर्गीकरण अलग–अलग स्तर पर हुआ।

Keywords: दलित, भारतीय समाज, सामाजिक व्यवस्था, सुधारवादी आंदोलन, सामाजिक संगठन, सामाजिक परिवर्तन।

*शोध अध्येता, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर।
Correspondence E-mail Id: editor@eurekajournals.com

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.

Introduction

प्रत्येक युग में सामाजिक परिवर्तन होते हैं। सांस्कृति, धार्मिक आर्थिक क्रांतियां होती हैं। उनको दिशा प्रदान करने के लिए युग पुरूष अपने विचारों की आहुतियां देते हैं। तन–मन–धन न्योछावर करते हैं। हर महापुरूष अपने समय की चिंतनधारा, सामाजिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में सोये हुए हिन्दू मानस को सबसे पहले अगर किसी सामाजिक संगठन ने जगाने का प्रयास किया था, तो वह था ब्रह्म समाज, जिसकी स्थापना 1828 ई0 में बंगाल में राजा राममोहन राय ने की। नवजागरण के इस अग्रदूत ने सतीप्रथा, जातिभेद, मूर्तिपूजा आदि का विरोध कर समाज में नयी स्फूर्ति लाने का प्रयास किया था। सामाजिक क्षेत्र में क्रांति की यह पहल थी, जिससे दलित समाज ने नवीन चेतना का अनुभव किया था। वैसे ब्रह्म समाज की स्थापना के पूर्व 1815 में उन्होंने ''आत्मीय–सभा'' की स्थापना की थी।[1]

राजा राममोहन राय के उपरांत ब्रह्म समाज को प्रोत्साहन देने वालों में देवेन्द्र नाथ टैगोर तथा केशवचन्द्र सेन प्रमुख थे। उन्होंने जाति–पाँति के भेदभाव को मिटाकर सामाजिक सुधार का कार्य किया। केशवचन्द्र सेन की बेटी का विवाह भी ''विजातीय–विवाह'' हुआ था। कुल मिलाकर राजा राममोहन राय तथा अन्य समाज–सुधारकों ने हिन्दू समाज को झकझोरने में प्रभावशाली भूमिका निभाई थी जिसका प्रभाव अन्य स्थानों पर भी पड़ा। इसी तरह से महाराष्ट्र में ''प्रार्थना समाज'' उन्हीं उद्देश्यों को लेकर सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में तत्पर था। ''प्राथ्रना समाज'' की स्थापना 1967 में बम्बई में डा0 आत्माराम ने की थी।[2] इसके प्रमुख नेताओं में न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे, डा0 रामकृष्ण गोपाल भांडारकर आदि थे। इस सामाजिक संगठन द्वारा स्थापित ''दलितोद्धार मिशन'' ने महत्वपूर्ण कार्य किया। अछूतोद्धार ही इसका विशेष लक्ष्य था। इस संस्था के द्वारा बम्बई में अस्पृश्यों के बच्चों के लिए स्कूल खोल गये। ''प्रार्थना समाज'' ने पंढरपुर में भी 1878 ई0 में ''अनाथ–बालकाश्रम'' की स्थापना की।[3]

देखा गया है कि ''प्रार्थना समाज'' ने दलितोद्धार के लिए कार्य तो किया लेकिन अपनी सीमा में रहकर ही; समाज में जागृति न होने के कारण ''प्रार्थना समाज'' को समझौताबादी दृष्टिकोण अपनाना पड़ा था। बीमार हुए समाज को झकझोरने की वैसी इच्छा शक्ति ''प्रार्थना समाज'' के कार्यकर्ताओं में न थी, जैसी ज्योतिबा फुले में थी। फिर भी मानव समाज के बीच समता का भाव पैदा कर स्वस्थ मूल्यों से उत्पन्न उपलब्धियों के लिए न्यायमूर्ति रानाडे तथा ''प्रार्थना समाज'' के सुधार कार्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

महाराष्ट्र में ही ज्योतिबा फुले का जन्म लेना एक महत्वपूर्ण घटना थी जिसने दलितोद्धार के कार्य को जुझारू रूप दिया था। ज्योतिबा फुले के समय में हिन्दू समाज अनेक कुरीतियों और मान्यताओं से ग्रस्त था। विशेषकर दलित वर्ग की स्थिति तो जानवरों से भी गई बीती थी। वे स्वयं माली जाति से थे। ज्योतिबा फुले को भली प्रकार इस बात का अहसास था कि यदि पुरूष के स्थान पर नारी को शिक्षित किया जाए तो पूरा समाज अपने आप शिक्षित हो जाएगा। 1848 में पूना स्थित भिडे हबेली में ज्योतिबा ने बालिकाओं के लिए पहली पाठशाला खोलकर ब्राहम्णों के अंध–विश्वास को गहरी ठेस पहुँचाई। इसके पूर्व 1832 में ब्रिटिश शासन ने पूना के बुधवार बाड़ा में एक पाठशाला खोली

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.

थी। इस तरह से ब्राहम्णों के विरोध के बावजूद ज्योतिबा द्वारा चलाये गये बालिकाओं के विद्यालय दिन–पर–दिन प्रगति के पथ पर अग्रसर होते थे।

इसी समय एक अंग्रेज ने महारों की बस्ती में लड़कियों का स्कूल खोला। पूना के ब्राहम्णों ने महारों को धमकाया। परिणामस्वरूप वह स्कूल बंद हो गया, लेकिन पहली जनवरी 1848 ई0 में ज्योतिबा फुले ने पूना स्थित तात्या साहेब की हबेली में बालिकाओं का विद्यालय खोला। प्रारम्भ में 6 बालिकाएं इस विद्यालय में आईं, इनमें 4 ब्राहम्ण, एक मराठा और धनगर (गड़रिया) थी। 15 मई 1848 को पूना की अछूत बस्ती में एक स्कूल खोला। जहाँ पर लड़के और लड़कियाँ दोनों पढ़ सकते थे। आरम्भ में इस स्कूल में सगुणा बाई क्षीर सागर और सावित्री बाई आदि ने भी शिक्षिका के रूप में कार्य किया। बास्तव में ज्योतिबा फुले ने ही दलित आन्दोलन की पहल की थी, जिसने बाद में चलकर ब्राह्मणी व्यवस्था के विरूद्ध क्रांति के रूप में लोगों के सोये हुए मानस को जगाने में सफलता प्राप्त की। ज्योतिबा फुले ने अछूतों के पीने के लिए तालाब भी बनवाये। ब्राहम्णों ने शूद्रातिशूद्रों पर होने बाले अन्याय की परम्परा को कायम रखने के लिए ''मनु स्मृति'' जैसे धर्म ग्रंथों का सहारा लिया और उनका हवाला देते हुए शूद्रों को ब्राहम्ण सताते रहे। इसी सन्दर्भ में ज्योतिबा फुले ने कहा था – ''शूद्र लोग उनके एवं उनके वंशजों के नीच गुलाम बनकर रहें, इस हेतु शूद्रों को जारज संतान ठहरा कर और उसमें भी स्त्री को नीच ठहरा कर ऊंच–नीच की जातिवादी भावना पैदा की। भट्टों की (ब्राहम्णों की) कुटिलता समझने पर शूद्रातिशूद्र मनु संहिता को मानव वंश का शास्त्र न मानकर शैतान की सिफारिश करने वाला शास्त्र कहेंगे। आज के ज्ञानी कहलाने वाले भट्टों (ब्राहम्णों) ने इसे न निपटाया तो वे इस ग्रंथ को फाड़कर तार–तार करके टोकरी में डाल देंगे या जला देंगे। यह काम वे केवल अंधेरे में ही नहीं बल्कि दिन–दहाड़े भट्टों (ब्राहम्णों) के आगे करेंगे। यह मेरी भविष्यवाणी हैं।'' ज्योतिबा फुले की यह भविष्यवाणी सही निकली। बाबा साहेब डा0 आम्बेडकर ने मनु स्मृति को खुलेआम जला दिया था।

ज्योतिबा फुले ने वैसे तो सात या आठ पुस्तकें लिखी थीं लेकिन 1863 ई0 के आसपास लिखा गया ग्रंथ ''गुलामगीरी'' अत्यंत प्रसिद्ध हुआ था। उसी दौरान जब अमेरिका में लिंकन ने वहां की दासप्रथा पर पुस्तक लिखकर प्रसिद्धि प्राप्त की तो ज्योतिबा ने अपनी इसी पुस्तक को इस प्रस्तावना के साथ आदर के प्रतीक स्वरूप अमेरिका के लोगों को समर्पित किया।

''अमेरिका के उन सभी लोगों के सम्मान में उन्हीं के नाम, जिन्होंने नीग्रो जाति की गुलामी के लिए निःस्वार्थ एवं निरपेक्ष आत्म बलिदानी भावना से काम किया। मेरे देशवासी उसका अनुसरण करके ब्राहम्णों की दासता के जाल से शूद्रों को मुक्त कराएं, ऐसी आशा है।''[4]

यह पुस्तक यूनान के महाकवि होमर की इन पंक्ति से आरम्भ होती है : ''जो धर्म मनुष्य को दासता के स्तर तक संकुचित कर देता है वह उसके आधे गुणों को समाप्त कर देता है।''[5] गुलामगीरी में ही आरक्षण का प्रश्न सर्वप्रथम आबादी के अनुपात के आधार पर उठाया गया था। इसी प्रश्न का हल डा0 आम्बेडकर ने 58 वर्ष बाद खोज निकाला था। इससे निश्चित ही ब्राहम्णों का धर्माडम्बरी जंजाल ज्योतिबा के संघर्षों के ज्वाल–जाल में भष्मीभूत होने लगा था। 24 सितम्बर 1873 ई0 में ज्योतिबा ने अपने सभी हितैषियों, प्रशंसकों तथा अनुयायियों की एक सभा पूना में बुलाई थी, जिसमें एक संस्था के निर्माण का प्रस्ताव रखा गया था। संस्था का नाम

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.

''सत्य शोधक समाज'' रखा गया।[6] इस संस्था के पहले अध्यक्ष चुने गये स्वयं ज्योतिबा और नानाराव गोविन्दराव कडलक मंत्री बने। संस्था के उद्देश्य भी निर्धारित किये गये, जिनमें मुख्य थे शूद्रों तथा अतिशूद्रों के द्वारा ब्राहमणों की पौराणिक मान्यताओं का विरोध करना; छोटे गरीब लोगों तथा उनके परिवारों को शिक्षित करना तथा अंधविश्वासों के प्रति उन्हें सावधान करना।

प्रारम्भिक दिनों में सत्य शोधक समाज की सदस्यता ब्राहमणों, महारों, ईसाईयों और मुसलमानों ने ग्रहण की। प्रत्येक रविवार को सत्य शोधक समाज की बैठक होती थी। इस बैठकों में हिन्दू समाज में फैली कुरीतियों पर बाद–विवाद होता था। विवादों में मितव्ययता, भूत–प्रेत में विश्वास न करना, छोटी जातियों के लोगों को शिक्षा देना, ऊच–नीच के भाव को निरस्त करना आदि मुख्य विषय थे,[7] जिन पर चर्चा होती थी।

1890 ई0 में इस महान क्रांतिकारी पुरूष ज्योतिबा का देहावसान हो गया। उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी सावित्री बाई ने दलितोद्धार का कार्य, पूर्ण ज्ञान लगन और ईमानदारी से पूरा किया। यह सावित्री बाई की ही देन थी कि घर–घर में (दलित परिवारों में भी) महिलाएं पढ़ने–लिखने लगी थी। महाराष्ट्र में ही ज्योतिबा के बाद कर्मवीर भाऊराव पाटिल तथा विट्ठल रामजी शिंदे जैसे सामाजिक कार्यकर्ताओं के दलितोद्धार के मिशन में रूचि लेने के कारण अस्पृश्यों के लिए ''ज्ञान मंदिरों'' के दरवाजे खुले।[8]

10 अप्रैल 1875 ई0 में बम्बई में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्यसमाज की स्थापना मुख्यतः दो–तीन कारणों को लेकर हुई। पहला कारण था–अछूतों का अन्य धर्मों की ओर पलायन। उन्नीसवीं शताब्दी की यह बड़ी विकट समस्या थी। उस समय अछूत समूह का मानस विभिन्न धर्म एवं वर्गों की तरफ बंटता चला जा रहा था। जहाँ एक ओर तबलीग आन्दोलन (अछूतों को मुसलमान बनाने की प्रक्रिया) चल रहा था, तो दूसरी तरफ अमृतपान आन्दोलन (अछूतों का सिख बनना) भी प्रगति पर था। तीसरी ओर बड़ी संख्या में अछूत ईसाई भी बन रहे थे। दूसरा कारण था–अधिकांश हिन्दुओं का (जिनमें पढ़े–लिखे अधिक थे) अंग्रेजी भाषा और संस्कृति की मोहमाया में फसना। इसलिए स्वामी दयानन्द जी ने भारत की प्राचीन गौरवशाली संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठा दिलाने के लिए हिन्दू धर्म में पल रही अस्पृश्यता, छूआछूत जैसी कुरीतियों को भी त्यागने की बात की। बाद में आर्य समाजियों द्वारा शुद्धि आन्दोलन चलाया जाना भी इस बात का साक्षी था कि उन्हें हिन्दु धर्म से अछूतों के पलायन से होने बाले अपने धर्म के घाटे की अधिक चिंता थी।

आर्य समाजियों द्वारा दलितोद्धार का कार्य उत्तरी भारत में अधिक हुआ। इसका एक कारण यह था कि उत्तरी भारत में अंग्रेजों और मुसलमानों का वर्चस्व शेष भारत से अधिक था। दूसरा कारण यह भी था कि जहाँ महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले, बंगाल में ब्रह्म समाज और मद्रास में द्रविड़ संस्थाएं दलितोद्धार के क्षेत्र में कार्यरत थीं, वहीं उत्तरी भारत में दलितोद्धार से सम्बंधित इस तरह के संगठनों और संस्थाओं का अभाव था।[9] इस तरह से 19वीं शदाब्दी के अंतिम दशकों में उत्तरी भारत में आर्य समाज पूरी तरह से फैल चुका था। दलितोद्धार के कार्य करते हुए जहां–तहां उनकी तकरार सनातन भाईयों से भी होती थी। विशेषकर हिन्दू और मुसलमानों के बीच टकराव की पृष्ठभूमि यहीं से बननी आरंभ हुई।

दिल्ली में अछूत जातियों के लोगों का बड़ी संख्या में निवास था, जिनमें बहुसंख्यक

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.

चमार थे। इनमें ही अधिकांश ईसाई धर्म से प्रभावित थे। दूसरी तरफ बाल्मीकि वर्ग मुस्लिम धर्म से प्रभावित था। यही कारण था कि अछूतों के रीति–रिवाज, संस्कार और यहां तक कि धार्मिक मान्यताओं पर इन दोनों धर्मों, यानी ईसाई और मुस्लिम का प्रभाव था। 1921 ई0 में स्वामी श्रद्धानंद ने ''दलितोद्धार समाज'' की स्थापना की थी जिसके मुख्य उद्देश्य थे:[10]–

(1) भारत की अछूत या दलित जातियों में सदाचार का प्रचार करना। (2) दलित समुदायों को उनके प्राचीन धर्म से पतित करने वाले आक्रमणों से बचाना और उनके अपने पूर्वजों के धर्म पर कायम रखना। (3) दलित समुदायों से अन्य श्रेणियों के घृणा के मिथ्या संस्कारों को दूर करके उनके खोये हुए मानवीय अधिकारों को वापस दिलाना। (4) समय और सामर्थ्यानुसार दलितों के लिए ऐसी शाखाएं खोलना, जिनके द्वारा वे अन्य देशवासियों के साथ शिक्षा ग्रहण करके सभ्य समाज में उचित स्थान पा सकें।

उदाहरण के लिए दिल्ली के चमारों को शिकायत थी कि जूते के दुकानदार उनसे दुर्व्यवहार करते हें। यह व्यवसाय अधिकतर मुसलमानों के ही हाथों में था। उस समय लाला नारायण दत्त ने ''नारायण शू कम्पनी'' के नाम से जूतों की एक दुकान खोली। दिल्ली में यह हिन्दुओं की पहली दुकान थी। बाद में अन्य दुकानें खुलीं। दिल्ली तथा आसपास के स्थानों पर दलितों के बच्चों के लिए पाठशालाएं तथा स्कूल खोलने के सन्दर्भ में भी आर्य समाज ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, साथ ही उन्हें कुओं से पानी लेनी की भी स्वीकृति दिलाई गयी। कुछ नये कुओं का निर्माण कराया गया।

इन्हीं दिनों पंजाब में आर्य समाज के समानान्तर ही एक नया सामाजिक संगठन अस्तित्व में आया। नवम्बर 1922 ई0 को लाहौर में त्यागमूर्ति भाई परमानन्द जी के मकान पर कोई 20–22 स्त्री–पुरूषों की एक–एक सभा हुई। उसमें जात–पांत तोड़ने के लिए एक संगठन बनाया गया जिसका नाम ''जात–पांत तोड़क मंडल'' रखा गया। इसके अलावा संतराम बी.ए. ने दलितोद्धार के क्षेत्र में अनेक छोटी–छोटी पुस्तिकाएं भी लिखीं।

23 दिसम्बर, 1926 ई0 को स्वामी श्रद्धानन्द की मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु के बाद ''अखिल भारतीय श्रद्धानन्द दलितोद्धार सभा'' का गठन किया गया, जिसे 1932 ई0 में सेठ जुगल किशोर बिड़ला का संरक्षण मिला। इसी बीच समय–समय पर आर्य समाज की और से दलितोद्धार सम्मेलन होते रहे। आर्य समाज द्वारा शुद्धि आन्दोलन इस समय चरम सीमा पर था।[11] कुल मिलाकर देखा जाये तो आरम्भ में आर्य समाज ने अछूतोद्धार के लिए प्रभावपूर्ण कार्य किये लेकिन बाद में चलकर आर्य समाज जैसे आन्दोलन में भी हिन्दू धर्म की बुराईयों आने लगीं। आर्य समाजी दलितोद्धार तो करते रहे लेकिन कहीं अधिक आडम्बर तथा कर्मकांडों की दलदल में भी फसे रहे। जहाँ–तहाँ मंदिरों में प्रवेश भी मिला लेकिन दलित वर्ग रहा अलग–थलग ही रहा। आर्य समाज में रहकर भी उनकी अलग ही पहचान बनी रही। वे आर्य समाज में अगर थे तो उसी पंक्ति में जिसमें सवर्णों के बीच दलित, फर्क केवल यह रहा कि अब वे दलित आर्यसमाजी कहलाने लगे, जबकि इससे पूर्व केवल दलित ही कहलाते थे।

आर्य समाजी के रूप में दलित समाज के कुछ लोगों की मानसिकता में भी परिवर्तन आया है। वे स्वयं अपने–अपने समाज से कटते चले गये। एक दलित आर्य समाजी अपने आप को उच्च समझने लगा। उसके माथे पर टीका, गले में धागे की माला दिखाई देने लगी तथा होठों पर श्लोक

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.

आदि के मिले–तुले स्वर। हां, आर्य समाज का इतना असर जरूर हुआ कि जहां भी अछूतों के द्वारा धर्म परिवर्तन की बात सुनने में आती, वहीं आर्य समाजी फौरन पहुंच जाते और उन्हें रोकते। इस तरह धर्म परिवर्तन की घटनाओं में कमी आई। दलितों के मन में हिन्दू धर्म के प्रति विश्वास भी बढ़ा, जिससे दलित तथा सवर्णों के बीच किसी सीमा तक कड़वाहट दूर हुई।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में देशभर में राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए वातावरण बनने लगा था। जगह–जगह लोगों में चेतना जागृत होने लगी थी। 1885 में ए.ओ. ह्यूम ने कुछ प्रबुद्ध लोगों की मदद से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की, जिसका प्रथम अधिवेशन बैरिस्टर सी. बनर्जी की अध्यक्षता में 28 दिसम्बर, 1885 ई0 को बम्बई में हुआ। बाद में कांग्रेस के अन्दर मुख्यतः दो धाराएं बनती चली गयीं–एक प्रगतिशील तो दूसरी रूढ़िवादी। कुछ लोग कांग्रेस को केवल राजनैतिक संस्था बनाने के हक में थे तो कुछ राजनैतिक चिंतन के साथ समाज में व्याप्त छुआछूत तथा अन्य कुरीतियों को दूर करना भी जरूरी मानते थे।[12]

कांग्रेस की स्थापना के ठीक एक वर्ष पश्चात् 1886 ई0 में कलकत्ते में कांग्रेस के दूसरे जलसे में यह तय हुआ कि एक ''अखिल भारतीय समाज सुधार सम्मेलन'' नाम की संस्था स्थापित की जाये, जिसका अधिवेशन कांग्रेस अधिवेशन के साथ कांग्रेस के पंडाल में ही हुआ करे। आठ साल तक समाज सुधार सम्मेलन कांग्रेस अधिवेशन के साथ कांग्रेस पंडाल में ही होता रहा। बाद में मतभेद बढ़ते गये। इस तरह 1849 में कांग्रेस पंडाल में समाज सुधार का अंतिम अधिवेशन हुआ। परिणामस्वरूप अस्पृश्यता निवारण कार्य–क्रम कांग्रेस के विचार क्षेत्र की सीमा से बाहर हो गये और कांग्रेस समाज सुधारकों के स्थान पर राजनीतिज्ञों की जमात बनती चली गयी। यही कारण था कि मद्रास में पेरियार रामास्वामी नायकर को कांग्रेस से इस्तीफा देना पड़ा।

मद्रास में दलितों की बहुत बुरी स्थिति थी। वहां ब्राह्मणी आक्टोपास ने दलित वर्ग की जीवन व्यवस्था को निर्दयतापूर्वक जकड़ा हुआ था। पेरियार को जितना अछूतों के साथ उठने–बैठने को मना किया जाता था, उतना ही वे उनसे मिलते–जुलते थे। 1920 ई0 में वे मद्रास प्रांत कांग्रेस के अध्यक्ष बने। पेरियार के नेतृत्व में विदेशी स्कूलों के बहिष्कार के साथ–साथ अछूतोद्धार आन्दोलन भी चलाये गये।

निश्चित ही मद्रास में पेरियार रामास्वामी नायकर का अछूतोद्धार कार्यक्रम एक जुझारू संगठन बनकर उभरा, जिसने बाद में चलकर प्रदेश में दलितोद्धार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कांग्रेस छोड़ने के बाद उन्होंने जस्टिस पार्टी के माध्यम से द्रविड़ों की समस्या को उभारा। इसी संदर्भ में दो साप्ताहिक पत्र ''कुडियरस'' और दैनिक पत्र ''बिदुतले'' का प्रकाशन किया। इसी बीच ''आत्म सम्मान'' और ''साउथ इंडियन लिबरल फेडरेशन'' का गठन हुआ और बाद में ''द्रविड़ कषगम'' बना।[13]

पेरियार रामास्वामी नायकर का कहना था कि भारत में जब तक ईश्वर का अस्तित्व रहेगा तब तक छुआछूत रहेगी। छुआछूत एक ऐसा घिनौना आविष्कार है, जिससे अछूतों को पशुओं के मूत्र आदि से मंदिर अपवित्र नहीं होता और जब कोई अछूत उसमें जाता है तो वह अपवित्र हो जाता है। उनका कहना था कि अस्पृश्य लोगों के लिए क्या यह वांछनीय नहीं है कि वे शक्ति अथवा हिंसा के बल पर इन विषमताओं से स्वतंत्रता प्राप्त करें या इस प्रयत्न में अपने को समाप्त कर डालें।

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.

पेरिवार के जीवन में वाइकाम की घटना महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस घटना ने पेरियार द्वारा चलाये जा रहे दलितोद्धार के कार्यक्रम को बहुत प्रभावपूर्ण बना दिया था। त्रावनकोर (कोचीन राज्य) में बेकोम स्थान पर मंदिर के निर्माण के कारण आसपास से अछूतों के गुजरने पर प्रतिबंध था। उस क्षेत्र में ब्राहम्णों का इतना बोलबाला था कि अगर कोई अछूत गलती से भी मंदिर की गलियों में आ जाता था तो ब्राहम्ण उसकी हत्या कर देते थे। अत्याचार की इस तरह की खबरें सुनकर पेरियार बाइकाम पहुंचे। पेरियार के इस अछूतोद्धार की सूचना जंगल की आग की तरह चारों तरफ ब्राहम्णों ने फैला दी कि अछूत भी अब मंदिर में प्रवेश करेंगे। यहाँ तक कि 9 मई, 1925 ई0 को स्वयं गांधीजी भी बाइकाम गये और पेरियार को समझाना चाहा। गांधीजी ने उस समय कहा[14] था– ''हमें ब्राहम्णों से टकराव की स्थिति नहीं पैदा करनी चाहिए। मंदिर में अछूतों के प्रश्नों पर जोर नहीं देना चाहिए। यदि मंदिर के आसपास की सड़कों और गलियों में आने–जाने का अधिकार अछूतों को मिल जाता है तो हमें उस पर ही संतोष कर लेना चाहिए।

बाद में चलकर गांधीजी के माध्यम से पेरियार और ब्राहम्णों के बीच समझौता हुआ और अछूतों को सड़क पर चलने का अधिकार मिला। पेरियार रामास्वामी नायकर की ''बाइकम के बीर'' की उपाधि से विभूषित किया गया।

बाद में चलकर पेरियार द्वारा दलितोद्धार आन्दोलन इस बिन्दु तक पहुंचा कि पेरियार के समर्थकों और सहयोगियों के बीच ''द्रविड़िस्तान'' की मांग के स्वर फूटने लगे। पेरियार ई.वी. रामास्वामी नायकर ने अपने अनुयायियों को काली कमीज पहनने को कहा। इस तरह से उनके द्वारा ईजाद किया हुआ ''ब्लैक शर्ट मूवमेंट'' भी आरम्भ हुआ। द्रविड़ भाषाए ईश्वर के लिए अभिशाप समझी जाती थीं। उन्होंने द्रविड़ भाषा और संस्कृति के विकास पर बल दिया। वस्तुतः पेरियार ने मद्रास में दलितोद्धार आन्दोलन के माध्यम से एक ऐसी लहर को जन्म दिया जिसने बाद में चलकर वहां की राजनीति तक को कहीं गहरे तक प्रभावित किया, और प्रभावित ही क्यों, उस पर पूर्ण रूप से कब्जा भी किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में दलितोद्धार तथा समाज के स्वस्थ मूल्यों की स्थापना के लिए देशभर में अनेक सामाजिक संगठनों–संस्थाओं का गठन हुआ। उनमें कुछ स्वयं दलितों द्वारा और कुछ गैर–दलितों द्वारा गठित हुई। इनमें एक संस्था थी–रामकृष्ण मिशन, जिसका उद्भव बंगाल में हुआ था। यों रामकृष्ण मिशन संस्था के संगठन की पृष्ठभूमि में स्वयं रामकृष्ण परमहंस का प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व था। बाद में रामकृष्ण परमहंस के परम शिष्य नरेन्द्र नाथ (विवेकानन्द) ने ईसाई मिशन से प्रभावित होकर 1898 ई0 में ''रामकृष्ण मिशन'' की स्थापना की। इसके दूरगामी प्रभाव समाज पर हुए। जहां–तहां अव्यवहारिक मान्यताएं टूटने में सफलता भी मिली।

1905 ई0 में गोपालकृष्ण गोखले ने ''सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी'' की स्थापना की जिसके छह प्रमुख लक्ष्यों में एक ''दलित वर्गों का उत्थान'' भी शामिल था। उसके अगले ही वर्ष विट्ठल रामजी शिन्दे ने 1906 ई0 में ''बम्बई प्रेसीडेंसी सोशल रिफॉर्म एसोसिएशन'' की सहायता से, जो महाराष्ट्र के एक ब्राहम्ण एन.जी. चन्द्रावरकर के सानिध्य में चल रही थी, ''डिप्रेस्ड क्लासिज मिशन सोसायटी ऑफ इंडिया'' की स्थापना की। मिशन के माध्यम से महारों, चमारों, पेरियारों, नामशूद्रों, ढेड़ों

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.

और अछूत कहे जाने वाले सभी वर्गों के उद्धार के लिए कार्य हुआ।[15]

Conclusion

उत्तरी भारत में भी इसी समय तक दलितोद्धार के लिए अनेक सामाजिक संगठन बन चुके थे, जो स्थानीय स्तर पर दलितोद्धार के कार्य में जुटे थे। उदाहरण के लिये पंजाब में मंगूराम ने (आदि धर्मी) संस्था का गठन किया, जिसके सदस्य चमार और बाल्मीकि ही हो सके। पंजाब में ही चौधरी बंसीलाल ने बाल्मीकि सभा गठित की। दूसरी और दिल्ली तथा आसपास के क्षेत्रों में जाटव या चमार जातियों में भी अलग–अलग संगठन बने। आगरे के माणकलाल ने ''जाटव संघ'' बनाकर लोगों में चेतना का संचार किया, दूसरी और 1922 में पुराना किला (पांडवों का किला) दिल्ली में प्रथम जाटव महासम्मेलन प्रमुख समाजसेवी मंत्री देवीदास की अध्यक्षता में आयोजित किया गया था। मूलरूप से इस सम्मेलन के आयोजन का उद्देश्य जाटव समाज की पहचान बनाये रखने के साथ–साथ इस वर्ग के लोगों को उनके द्वारा किये जाने वाले घृणित कार्यों का परित्याग करने के लिए प्रेरणा भी देना था। जाटवों की संस्था के माध्यम से अनेक सत्याग्रह हुए।

References

[1]. गांधीमोहनदास करमचंद, ***सत्य के प्रयोग,*** अहमदाबाद, नव जीवन प्रकाशन मंदिर, पृष्ठ–249.

[2]. वर्मावी0पी0, ***आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन,*** आगरा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिशर्स, पृष्ठ–216–217.

[3]. लिमये मधु डॉ0 ***अम्बेडकर, एक चिंतन,*** नयी दिल्ली, सरदार बल्लभ भाई पटेल एजूकेशन सोसायटी, पृ0–26.

[4]. उपाध्याय हरि, ***बाबू कथा,*** राजघाट वाराणसी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, पृष्ठ–125.

[5]. कृपलानी जे0बी0, ***गांधी हीस लाइफ एण्ड थॉट,*** नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना एवम् प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 383.

[6]. नंदा बलराम, ***गांधी व उनके आलोचक,*** दिल्ली, सारांश प्रकाशन प्रा0लि0, पृष्ठ–38.

[7]. उपाध्याय हरिभाऊ, ***बापू कथा,*** राजघाट वाराणसी, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, पृष्ठ 126.

[8]. गुप्ता द्वारका प्रसाद, ***महात्मा गांधी व अस्पृश्यता,*** दिल्ली, ज्ञान भारती, पृष्ठ 78, 79.

[9]. सिंह रामगोपाल, ***भारतीय दलित समस्याएं व समाधान,*** भोपाल म0प्र0, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ 71.

[10]. चौहान संदीप सिंह, ***भारत में दलित चेतना, गांधी व अम्बेडकर,*** जयपुर, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, पृष्ठ–47.

[11]. विद्याधर महाजन, ***आधुनिक भारत का इतिहास,*** राम नगरनई दिल्ली, एस0. चन्द एण्ड कंपनी लि0 पृ0 483.

[12]. अम्बेडकर बी0आर0, ***कांग्रेस एवं गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया,*** लखनऊ, समता साहित्य प्रकाशन पृष्ठ–341.

[13]. वकील ए0के0, ***गांधी–अम्बेडकर–डिस्प्यूट एन एनालिटिकल स्टडी,*** पंजाबी बाग नई दिल्ली, आशीष पब्लिशिंग हाऊस पृष्ठ–171.

[14]. राम जगजीवन, ***भारत में जातिवाद एवं हरिजन समस्या,*** कश्मीरी गेट, नई दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स प्रा0लि0, पृष्ठ–43.

[15]. सिंह राम गोपाल, ***भारतीय दलित समस्याएं व समाधान,*** म0प्र0, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ–72.

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.